॥ श्रीहरिः ॥ 314

व्यापारसुधारकी आवश्यकता
और हमारा कर्तव्य

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

व्यापारसुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

—— जयदयाल गोयन्दका ——

॥ श्रीहरिः ॥

व्यापारसुधारकी आवश्यकता

भारतवर्षके व्यापार और व्यापारियोंकी आज बहुत बुरी दशा है। व्यापारकी दुरवस्थामें विदेशी शासन भी एक बड़ा कारण है, परन्तु प्रधान कारण व्यापारीसमुदायका नैतिक पतन है। व्यापारकी उन्नतिके असली रहस्यको भूलकर लोगोंने व्यापारमें झूठ, कपट, छलको स्थान देकर उसे बहुत ही घृणित बना डाला है। लोभकी अत्यन्त बढ़ी हुई प्रवृत्तिने किसी भी तरह धन कमानेकी चेष्टाको ही व्यापारके नामसे स्वीकार कर लिया है। बहुत-से भाई तो व्यापारमें झूठ, कपटका रहना आवश्यक और स्वाभाविक मानने लगे हैं और वे ऐसा भी कहते हैं कि व्यापारमें झूठ, कपट बिना काम नहीं चलता। परन्तु वास्तवमें यह बड़ा भारी भ्रम है। झूठ, कपटसे व्यापारमें आर्थिक लाभ होना तो बहुत दूरकी बात है, परन्तु उलटी हानि होती है। धर्मकी

हानि तो स्पष्ट ही है। आजकल व्यापारी-जगत्में अंग्रेज-जातिका विश्वास औरोंकी अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ है। व्यापारी लोग अंग्रेजोंके साथ व्यापार करनेमें उतना डर नहीं मानते जितना उन्हें अपने भाइयोंके साथ करनेमें लगता है। यह देखा गया है कि गल्ला, तिलहन वगैरह अंग्रेजोंको दो आना नीचे भावमें भी लोग बेच देते हैं, आमदनी मालके लेन-देनका सौदा करनेमें भी पहले अंग्रेजोंको देखते हैं, इसका कारण यही है कि उनमें सच्चाई अधिक है। इसीसे उनपर लोगोंका विश्वास अधिक है। इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि अंग्रेज सभी सच्चे और भारतवासीमात्र सच्चे नहीं हैं। यहाँ मतलब यह है कि व्यापारी-कार्योंमें हमारी अपेक्षा उनमें सत्यका व्यवहार कहीं अधिक है। वह भी किसी धर्मके खयालसे नहीं किन्तु व्यापारमें उन्नति होने और झूठे झंझटोंसे बचनेके खयालसे है।

सच्चाईके व्यवहारके कारण जिन अंग्रेज और भारतीय फर्मोंपर लोगोंका विश्वास है, उनका माल

कुछ ऊँचे दाम देकर भी लोग लेनेमें नहीं हिचकते। बराबरके भावमें तो खुशामद करके उनके साथ काम करना चाहते हैं।

व्यापारमें प्रधानत: क्रय-विक्रय होता है, क्रय-विक्रयके कई साधन हैं, कोई चीज तौलपर ली-दी जाती है, कोई नापपर तो कोई गिनतीपर। नमूना देखना-दिखलाना भी एक साधन होता है। जो दूसरेके लिये या दूसरोंका माल खरीदते-बेचते हैं, वे आढ़तिया कहलाते हैं और जो दूसरोंसे दूसरोंको ठीक भावमें किसीका पक्ष न कर उचित दलालीपर माल दिला देते हैं, वे दलाल कहलाते हैं। इन्हीं सब तरीकोंसे व्यापार होता है। वस्तुओंके खरीदने-बेचने, तौल-नाप और गिनती आदिसे कम देना या अधिक लेना, चीज बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) चीज मिलाकर दे देना या धोखा देकर अच्छी ले लेना, नमूना दिखाकर उसको घटिया चीज देना और धोखेसे बढ़िया लेना, नफा, आढ़त, दलाली ठहराकर उससे अधिक लेना या धोखेसे

कम देना, दलाली या आढ़तके लिये झूठी बातें समझा देना अथवा झूठ, कपट, चोरी, जबरदस्ती या अन्य किसी प्रकारसे दूसरेका हक मार लेना, ये सब व्यापारके दोष हैं। आजकल व्यापारमें ये दोष बहुत ज्यादा आ गये हैं। किसी भी दोषका कोई भी खयाल न कर किसी तरह भी धन पैदा कर लेनेवाला ही आजकल समझदार और चतुर समझा जाता है। समाजमें उसीकी प्रतिष्ठा होती है। धनकी कमाईके सामने उसकी सारी चोरियाँ घरवाले और समाज सह लेता है। इसीसे चोरी और झूठ, कपटकी प्रवृत्ति दिनोदिन बढ़ रही है। व्यापारमें झूठ, कपट नहीं करना चाहिये या इसके बिना किये भी धन पैदा हो सकता है, ऐसी धारणा ही प्राय: लोप हो चली है। इसीसे जिस तरफ देखा जाता है उसी तरफ पोल नजर आती है।

अधिकांश भारतीय मिलोंके साथ काम करनेमें व्यापारियोंको यह डर बना ही रहता है कि तेज बाजारमें हमें या तो नमूनेके अनुसार क्वालिटीका

माल नहीं मिलेगा या ठीक समयपर नहीं मिलेगा। कपड़ेकी मिलोंमें जिस तरहकी कार्यवाहियाँ होती सुनी गयी हैं, वे यदि वास्तवमें सत्य हैं तो हमारे व्यापारमें बड़ा धक्का पहुँचानेवाली हैं। रूई खरीदनेमें मैनेजिंग एजेंट लोग बड़ी गड़बड़ किया करते हैं।

रूईके बाजारमें घट-बढ़ बहुत रहती है। रूईका सौदा करनेपर भाव बढ़ जाता है तो एजेंट रूई अपने खाते रख लेते हैं और यदि भाव घट जाता है तो अपने लिये अलग खरीदी हुई रूई भी मौका लगनेपर मिल-खाते नोंध देते हैं। वजन बढ़ानेके लिये कपड़ोंमें माँडी लगानेमें तो अहमदाबाद मशहूर है। रूईका भाव बढ़ जानेपर सूतमें भी कमी कर दी जाती है। अनेक तरहके बहाने बताकर कंट्राक्टका माल भी समयपर नहीं दिया जाता। प्रायः लम्बाई-चौड़ाईमें भी गोलमाल कर दी जाती है। सूतमें वजन भी कम दे दिया जाता है, इन्हीं कारणोंसे बहुत-सी मिलोंकी साख नहीं जमती। पक्षान्तरमें विलायती वस्त्र-व्यवसाय भारतके लिये महान् घातक होनेपर

भी कंट्राक्टोंकी शर्तोंके पालनमें अधिक उदारता और सच्चाई रहनेके कारण बहुत-से व्यापारी उस कामको छोड़ना नहीं चाहते। यहाँके मालके दाम ज्यादा रहनेका एक कारण अत्यधिक लोभकी मात्रा ही है।

अनाज आदि खानेकी चीजोंमें दूसरे घटिया अनाज मिलाये जाते हैं—मिट्टी मिलायी जाती है। जीरा, धनिया आदि किरानेकी और सरसों, तिल आदि तिलहन चीजोंमें भी दूसरी चीज या मिट्टी मिलायी जाती है। किसान तो मामूली मिट्टी मिलाते हैं, परन्तु व्यापारी लोग भी उसी रंगकी मिट्टी खरीदकर मिलाया करते हैं। वजन ज्यादा करनेके लिये बरसातमें माल गीली जगहमें रखते हैं जिससे कहीं-कहीं माल सड़ जाता है, खानेवाले चाहे बीमार हो जायँ, पर व्यापारियोंके घरोंमें पैसे अधिक आने चाहिये। गल्ला आदि जहाँ रखा जाता है वहाँ पहलेसे ही घटिया माल तो नीचे या कोनोंमें रखते हैं और बढ़िया माल सामने नमूना दिखानेकी जगह

रखा जाता है, वजनमें भी बुरा हाल है। लेन-देनके बाट भी दो प्रकारके होते हैं।

पाटके व्यापारमें भी चोरियोंकी कमी नहीं है। वजन बढ़ानेके लिये पानी मिलाया जाता है। मिलोंमें माल पास करानेवाले बाबुओंको कुछ दे-दिलाकर बढ़ियाके कंट्राक्टमें घटिया माल दे दिया जाता है। वजनमें चोरी होती ही है। इसी तरह रूईमें पानी तथा धूल मिलायी जाती है। पाटकी तरह इनकी गाँठोंके अंदर भी खराब माल छिपाकर दे दिया जाता है।

सभी चीजोंमें किसानोंसे माल खरीदते समय दामोंमें, वजनमें, घटियाके बदले बढ़िया लेनेमें धोखा देकर लूटनेकी चेष्टा रहती है और बेचते समय ठीक इससे उलटा व्यवहार करनेकी कोशिश होती है।

खाद्य पदार्थोंमें भी शुद्ध घी, तैल या आटातक मिलना कठिन हो गया है। ऐसा कोई काम नहीं जो आजकल व्यापारी लोभवश न करते हों। घीमें चरबी, तैल, विलायती घी और मिट्टीका तेल

मिलाया जाता है। तैलमें भी बड़ी मिलावट होती है। सरसोंके साथ तीसी, रेड़ी तो मिलाते ही हैं, परन्तु बड़ी-बड़ी मिलोंमें कुसुमके बीज भी मिलाये जाते हैं। जिसके तैलसे बदहजमी, हैजा, संग्रहणी आदि बीमारियाँ फैलती हैं। मनुष्य दुःख पाते हैं, मर जाते हैं। परन्तु लोभियोंको इस बातकी कोई परवा नहीं! इसी तैलकी खली गायोंको खिलायी जाती है, जिससे उनके अनेक प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं। गोभक्त और गोसेवक कहानेवाले लोगोंकी यह गंदी करतूत है। ऐसी मिलोंमें जब जाँचके लिये सरकारी अफसर आते हैं तो उन्हें धोखा देकर या उनकी कुछ भेंट-पूजा कर पिण्ड छुड़ा लिया जाता है। साइनबोर्डोंपर 'जलानेका तैल' लिखकर भी दण्डसे बचनेकी चेष्टा की जाती है।

नारियल, तिल, सरसों आदिके तैलोंमें कई तरहके विलायती किरासिन तैल मिलाये जाते हैं, जो पेटमें जाकर भाँति-भाँतिकी बीमारियाँ पैदा करते हैं।

आजकल देशमें जो अधिक बीमारी फैल रही

है, घर-घरमें रोगी दीख पड़ते हैं—इसका एक प्रधान कारण व्यापारियोंका लोभवश खाद्यपदार्थोंमें अखाद्य चीजोंका मिला देना भी है।

कपड़ेके व्यापारमें भी बड़े-छोटे सभी स्थानोंमें प्रायः चोरी होती है। बम्बई, कलकत्ते आदि बड़े शहरोंके बड़े दूकानदारोंकी बड़ी चोरियाँ होती हैं। देहातके दूकानदार भी किसी तरह कमी नहीं करते। जहाँ अमुक नफेपर माल बेचनेका नियम है, वहाँ ग्राहकोंको ठगनेके लिये एक झूठा बीजक मँगा लेते हैं। हाथीके दाँत खानेके और दिखानेके और!

सूतके देहाती व्यापारी भी सूतके बंडलोंमेंसे मुट्ठे निकालकर उसे ८ नम्बरसे १६ नम्बरतकका बना लेते हैं। इस बेईमानीके लिये कलकत्तेमें कई कारखाने बने हुए हैं, जिनमें खरीदार जुलाहोंको धोखा देनेके लिये गोलमाल की जाती है, दूसरे बंडल बनाकर बेचनेमें जुलाहे ठगे जाते हैं, खर्च बढ़ जाता है और सूत उलझ जाता है।

कई जगह चीनीके ऐसे कारखाने हैं जिनमें विदेशी

चीनीमें गुड़ मिलाकर उसका रंग बदल दिया जाता है और फिर वह बनारसी या देशीके नामसे बेची जाती है।

आढ़त, दलाली, कमीशनमें भी तरह-तरहकी चोरियाँ की जाती हैं। वास्तवमें आढ़तियेको चाहिये कि महाजनके साथ जो आढ़त ठहरा ले उससे एक पैसा भी छिपाकर अधिक लेना हराम समझे। महाजनको विश्वास दिलाया जाता है कि आढ़त ०.७५ या ०.५० पैसे सैकड़ा ली जायगी; परन्तु छल, कपटसे जितना अधिक चढ़ाया जाय उतना ही चढ़ाते हैं। २, ४, ५ रु० सैकड़ेतक वसूल करके भी सन्तोष नहीं होता। बोरा, बारदाना, मजदूरी आदिके बहानेसे महाजनसे छिपाकर या मालपर अधिक दाम रखकर दलाली या बट्टा वगैरह उसे न देकर, अथवा गुप्तरूपसे अपना माल बाजारसे खरीदा हुआ बताकर तरह-तरहसे महाजनको ठगना चाहते हैं।

कमीशनके काममें भी बड़ी चोरियाँ होती हैं। बाजार मंदा हो गया तो तेज भावमें बिके हुए मालकी बिक्री मंदेकी दे देते हैं। तेज हो गया तो

किसी दूसरेसे मिलकर बिना बिके ही बहुत-सा माल खुद खरीदकर पहलेका बिका बताकर झूठी बिक्री भेज देते हैं। बँधे भावसे कम-ज्यादा भावमें भी माल बेचते हैं।

दलालीके काममें अपने थोड़े-से लोभके लिये 'ग्राहकका गला कटा दिया जाता है।' दलालका कर्तव्य है कि वह जिससे जिसको माल दिलवावे, उन दोनोंका समान हित सोचे। अपने लोभके लिये दोनोंको उलटी-सीधी पट्टी पढ़ाकर लेनेवालेको तेजी और बेचनेवालेको झूठ ही मंदीकी रुख बताकर काम करवा देना बड़ा अन्याय है। अपनी जो सच्ची राय हो वही देनी चाहिये। दोनों पक्षोंको अपनी स्पष्ट धारणा और बाजारकी स्थिति सच्ची समझानी चाहिये।

कहाँतक गिनाया जाय! व्यापारके नामपर चोरी, डकैती और ठगी सब कुछ होती है। न ईश्वरपर विश्वास है, न प्रारब्धपर और न न्याय तथा सत्यपर ही। वास्तवमें व्यापारमें कुशलता भी नहीं है। कुशल

व्यापारी सच्चा होता है, वह दूसरोंको धोखा देनेवाला नहीं होता। सच्चाईसे व्यापारकर वह सबका विश्वासपात्र बन जाता है, जितना विश्वास बढ़ता है उतना ही उसका झंझट कम होता है और व्यापारमें दिनोदिन उन्नति होती है। मोल-मुलाई करनेवाले दूकानदारोंको ग्राहकोंसे बड़ी माथापच्ची करनी पड़ती है। विश्वास जम जानेपर सच्चे एक दाम बतानेवाले दूकानदारोंको माल बेचनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होती, ग्राहक चाहकर बिना दाम पूछे उसका माल खरीदते हैं, उन्हें वहाँ ठगे जानेका भय नहीं रहता। परन्तु आजकल तो दूकान खोलनेके समय प्रतिदिन लोग प्रायः भगवान्‌से प्रार्थना किया करते हैं—'शंकर! भेज कोई हियेका अंधा और गठरीका पूरा' यानी भगवान् ऐसा ग्राहक भेजें जिसे हम ठग सकें, जो अपनी मूर्खतासे अपने गलेपर हमसे चुपचाप छुरी फिरवा ले। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई ग्राहक अपनी बुद्धिमानी और सावधानीसे तो भले ही बच जाय, परन्तु दूकानदार

तो उसपर हाथ साफ करनेको सब तरह सजा-सजाया तैयार है।

थोड़े-से जीवनके लिये ईश्वरपर अविश्वास करके पाप बटोरना बड़ी मूर्खता है। आमदनी तो उतनी ही होती है जितनी होनी होती है, पाप जरूर पल्ले बँध जाता है। पापका पैसा ठहरता नहीं, इधर आता है उधर चला जाता है, बट्टा-खाता जितना रहना होता है उतना ही रहता है। लोग अपने मनमें ही धन आता हुआ देखकर मोहित हो जाते हैं। पापसे धन पैदा होनेकी धारणा बड़ी ही भ्रममूलक है। इससे धन तो पैदा होता नहीं परन्तु आत्माका पतन अवश्य होता है। लोक-परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। जो अन्यायसे धन कमाकर उसमेंसे थोड़ा-सा दान देकर धर्मात्मा बनना और कहलाना चाहते हैं वे बड़े भ्रममें हैं। भगवान्‌के यहाँ इतना अन्धेर नहीं है, वहाँ सबकी सच्ची परख होती है।

अतएव परमात्मापर विश्वास करके व्यापारमें झूठ, कपटको सर्वथा त्याग देना चाहिये। किसी भी

चीजमें दूसरी कोई चीज कभी मिलानी नहीं चाहिये। वजनमें ज्यादा करनेके लिये रूई, पाट, गल्ले आदिमें पानी मिलाना या गीली जगहमें रखना नहीं चाहिये। खाद्य पदार्थोंमें मिलावट करके लोगोंके स्वास्थ्य और धर्मको कभी नहीं बिगाड़ना चाहिये। वजन, नाप और गिनतीमें न तो कम देना चाहिये और न ज्यादा लेना चाहिये। नमूनेके अनुसार ही मालका लेन-देन करना अत्यन्त आवश्यक है।

आढ़त ठहराकर किसी भी तरहसे महाजनकी एक पाई ज्यादा लेना बड़ा पाप है। इससे खूब बचना चाहिये। इसी प्रकार कमीशनके काममें भी धोखा देकर काम नहीं करना चाहिये। दलालको भी चाहिये कि वह सच्ची रुख बताकर लेने-बेचनेवालेको भ्रमसे बचाकर अपने हक और मेहनतका ही पैसा ले।

हम जिसके साथ व्यवहार करें उसके साथ हमें वैसा ही बर्ताव करना चाहिये जैसा हम अपने साथ चाहते हैं। हम जैसा अपने हित और स्वार्थका खयाल रखते हैं उतना ही उसके हित और स्वार्थका

भी खयाल रखना चाहिये। सबसे उत्तम तो वह है कि जो अपना स्वार्थ छोड़कर पराया हित सोचता है—दूसरेके स्वार्थके लिये अपने स्वार्थको त्याग देता है। व्यापार करनेवाला होनेपर भी ऐसा पुरुष वास्तवमें साधु ही है।

आजकल सट्टेकी प्रवृत्ति देशमें बहुत बढ़ गयी है। सट्टेसे धन, जीवन और धर्मको कितना धक्का पहुँच रहा है, इस बातपर देशके मनस्वियोंको विचारकर शीघ्र ही इसे रोकनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये। पहले यह सट्टा अधिकतर बम्बईमें ही था, और जगह कहीं-कहीं बरसातके समय बादलोंके सौदे हुआ करते थे, परन्तु अब तो इसका विस्तार चारों ओर प्रायः सभी व्यापार-क्षेत्रोंमें हो गया है। कुछ वर्षों पूर्व व्यापारीलोग सट्टे-फाटकेसे घृणा करने और सट्टेबाजोंके पास बैठने और उनसे बातें करनेमें हिचकते थे, पर अब ऐसे व्यापारी बहुत ही कम मिलते हैं जो सट्टा न करते हों। सट्टा उसे कहते हैं कि जिसमें प्रायः मालका लेन-देन न हो, सिर्फ

समयपर घाटा-नफा दिया-लिया जाय। रूई, पाट, हेसियन, गल्ला, तिलहन, हुण्डी-शेयर और चाँदी आदि प्रायः सभी व्यापारी वस्तुओंका सट्टा होता है। सट्टेबाज न कमानेमें सुखी रहता है न खोनेमें, उसका चित्त सदा ही अशान्त रहता है। सट्टेवालोंके खर्च अनाप-शनाप बढ़ जाते हैं। मेहनतकी कमाईसे चित्त उखड़ जाता है। ये लोग पल-पलमें लाखोंके सपने देखा करते हैं। झूठ, कपटको तो सट्टेका साथी ही समझना चाहिये। सट्टेवालोंकी सदियोंकी इज्जत-आबरू घंटोंमें बरबाद हो जाती है। सट्टेके कारण बड़े शहरोंमें प्रतिवर्ष एक-न-एक आत्महत्या या आत्महत्याके प्रयत्न सुननेमें आते हैं। आत्महत्याके विचार तो शायद कई बार कितनोंके ही मनमें उठते होंगे। सट्टेबाजोंको आत्माका सुख मिलना तो बहुत दूरकी बात है, वे बेचारे गृहस्थके सुखसे भी वंचित रहते हैं। कई लोगोंका चित्त तो सट्टेमें इतना तल्लीन रहता है कि उन्हें भूख, प्यास और नींदतकका पता नहीं रहता। बीमार पड़ जाते हैं, बेचैनीसे कहीं

लुढ़क पड़ते हैं और नींदमें उन्हें प्रायः सपने सट्टेके ही आते हैं। धर्म, देश, माता, पिता आदिकी सेवा तो हो ही कहाँसे, अपने स्त्री-बच्चोंकी भी पूरी सार-सँभाल नहीं होती; घरमें बच्चा बीमारीसे सिसक रहा है, सहधर्मिणी रोगसे व्याकुल है, सट्टेबाज विलायतके तारका पता लगानेके लिये बाड़ोंमें भटक रहे हैं। एक सज्जनने यह आँखों-देखी दशा वर्णन की थी। खेद है कि इस सट्टेको भी लोग व्यापारके नामसे पुकारते हैं जिसमें न घरका पता है, न संसारका और न शरीरका। मेरी समझसे यदि इतनी तल्लीनता थोड़े समयके लिये भी परमात्मामें हो जाय तो उससे परमार्थके मार्गमें अकथनीय उन्नति हो सकती है। इस सट्टेकी प्रवृत्तिसे मजूरीके काम नष्ट हो रहे हैं। कलाका नाश हो रहा है। इस अवस्थामें यथासाध्य इसका प्रचार रोकना चाहिये।

इस सट्टेके सिवा एक जुआ घुड़दौड़का होता है, जिसमें बड़े-बड़े धनी-मानी लोग जा-जाकर बड़े

चावसे दाँव लगाया करते हैं। मनु महाराजने जीवोंके जुएको सबसे बड़ा पापकारी जुआ बतलाया है। अतएव सट्टा, जुआ सब तरहसे त्याग करनेयोग्य है। यदि कोई भाई लोभवश या दोष समझकर भी आत्माकी कमजोरीसे सर्वथा त्याग न कर सकें तो कम-से-कम घुड़दौड़में बाजी लगाना तो बिलकुल ही बंद कर दें और सट्टेमें बिना हुई चीज माथे कर-कर बेचनेका काम कभी न करें। बिना हुए माथे कर-कर बेचनेवालेका माल वास्तवमें किसीको लेना नहीं चाहिये, इससे बड़ी भारी हानि होती है। जो सट्टेकी हानि समझकर भी उसका त्याग नहीं करता वह खुद अपनी हिंसाका साधन तो करता ही है, पर दूसरोंको भी यथेष्ट नुकसान पहुँचाता है। जो लोग 'खेला' (कार्नर) वगैरह करके मालके दाम बेहद चढ़ा देते हैं वे बड़ा पाप करते हैं, अतएव खेला करनेवालेमें कभी शामिल नहीं होना चाहिये, उसमें गरीबोंकी आह और उनका बड़ा शाप सहन करना पड़ता है।

कुछ ऐसे व्यापार होते हैं जिनमें बड़ी हिंसा होती है। जैसे लाख, रेशम और चमड़ा आदि।

लाख कीड़ोंसे उत्पन्न होती है। वृक्षोंसे लाल गोंद-जैसे टुकड़े उतारे जाते हैं, उनमें दो प्रकारके जीव रहते हैं। एक तो बहुत बारीक रहते हैं जो बरसातमें गरमीसे जहाँ लाख पड़ी होती है वहाँ निकल-निकलकर दीवालोंपर चढ़ जाते हैं, दीवाल उन कीड़ोंसे लाल हो जाती है। दूसरे जीव लम्बे कीड़े-जैसे होते हैं, ये लाखके बीज समझे जाते हैं, इन असंख्य जीवोंकी बुरी तरह हिंसा होती है। प्रथम तो लाखके धोनेमें ही असंख्य प्राणी मर जाते हैं; फिर थैलियोंमें भरकर जलती हुई भट्ठीमें उसे तपाया जाता है, जिससे चपड़ा बनता है, जानवरोंके खूनका लखवटिया बनता है। जिस समय उसको तपाते हैं उस समय उसमें चटाचट शब्द होता है। चारों ओर दुर्गन्ध फैली रहती है, पानी खराब हो जाता है, जिससे बीमारियाँ फैलती हैं। इस व्यवहारको करनेवाले अधिकांश वैश्य भाई ही हैं।

इसी प्रकार रेशमके बननेमें भी बड़ी हिंसा होती है। रेशमसहित कीड़े उबलते जलमें डाल दिये जाते हैं, वे सब बेचारे उसमें झुलस जाते हैं, पीछे उनपर लिपटा हुआ रेशम निकाल लिया जाता है।

चमड़ेके लिये भारतवर्षमें कितनी गो-हत्या होती है यह बतलाना नहीं होगा। अतएव लाख, रेशम और चमड़ेका व्यापार और व्यवहार प्रत्येक धर्मप्रेमी सज्जनको त्याग कर देना चाहिये।

कुछ लोग केवल ब्याजका पेशा करते हैं। यद्यपि ब्याजका पेशा निषिद्ध नहीं है, परन्तु व्यापारके साथ ही रुपयेका ब्याज उपजाना उत्तम है। ब्याजके साथ व्यापार करनेवाला कभी अकर्मण्य नहीं होता, आलसी और नितान्त कृपण भी नहीं होता। उसमें व्यापार-कुशलता आती है। लड़के-बच्चे काम सीखते हैं। कर्मण्यता बढ़ती है। अतएव केवल ब्याजका ही पेशा नहीं करना चाहिये, परन्तु यदि कोई ऐसा न कर सके तो लोभवश गरीबोंको लूटना तो अवश्य छोड़ दे। ब्याजके पेशेवाले गरीबोंपर

बड़ा अत्याचार किया करते हैं। कम रुपये देकर ज्यादाका दस्तावेज लिखवाते हैं। जरा-जरा-सी बातपर उनको तंग करते हैं। ब्याजपर रुपया लेनेवाले लोगोंकी सारी कमाई ब्याज भरते-भरते पूरी हो जाती है। कमाई ही नहीं, बल्कि स्त्रियोंका जेवर, पशु, धन, जमीन, घर-द्वार सब उस ब्याजमें चले जाते हैं। ब्याजके पेशेवाले निर्दयतासे उनके जमीन-मकानको नीलाम करवाकर गरीब स्त्री-बच्चोंको राहका कंगाल और निराधार बना देते हैं। लोभसे ये सारे पाप होते हैं। इन पापोंकी अधिक वृद्धि प्रायः केवल ब्याजका पेशा करनेवालोंके अत्यधिक लोभसे होती है। अतएव ब्याज कमानेवालोंको कम-से-कम लोभसे अन्याय तो नहीं करना चाहिये।

यथासाध्य विदेशी वस्त्र और अन्यान्य विदेशी वस्तुओंके व्यापारका त्याग करना चाहिये।

सबसे पहली और अन्तिम बात यह है कि झूठ, कपट, छलका त्यागकर, दूसरेको किसी प्रकारका

नुकसान न पहुँचाकर न्याय और सत्यताके साथ व्यापार करना चाहिये। यह तो व्यापार-शुद्धिकी बात संक्षेपसे कही गयी। इतना तो अवश्य ही करना चाहिये। परन्तु यदि वर्णधर्म मानकर निष्कामभावसे व्यापारके द्वारा परमात्माकी पूजा की जाय तो इसीसे परमपदकी प्राप्ति भी हो सकती है।

व्यापारसे मुक्ति

असत्य, कपट और लोभ आदिका त्याग करके यदि भगवत्-प्रीत्यर्थ न्याययुक्त व्यापार किया जाय तो वही मुक्तिका मुख्य साधन बन सकता है। मुक्तिमें प्रधान हेतु भाव है, क्रिया नहीं है। शास्त्रविधिके अनुसार सकामभावसे यज्ञ, दान, तप आदि उत्तम कर्म करनेवाला मुक्ति नहीं पाता, सकाम बुद्धिके कारण वह या तो उस सिद्धिको प्राप्त होता है जिसके लिये वह उक्त सत्कार्य करता है, या निश्चित कालके लिये स्वर्गको प्राप्त करता है, परन्तु निष्कामभावसे किया हुआ अल्प कर्म भी मुक्तिका हेतु बन सकता है। इसीलिये सकाम कर्मको तुच्छ और अल्प कहा है, कुछ भी न करनेवालेकी अपेक्षा सकाम यज्ञादि कर्म करनेवाले बहुत ही उत्तम हैं और इन लोगोंको प्रोत्साहन ही मिलना चाहिये, परन्तु सकामभाव रहनेतक वह कर्म स्त्री, धन, मान-बड़ाई या स्वर्गादिके अतिरिक्त

परमपदकी प्राप्ति करानेमें समर्थ नहीं होता। इसीसे गीतामें भगवान्‌ने सकाम कर्मको निष्कामकी अपेक्षा नीचा बताया है (देखो गीता २। ४२, ४३, ४४; ७। २०, २१, २२; ९। २०, २१)। पक्षान्तरमें निष्काम कर्मकी प्रशंसा करते हुए भगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २।४०)

'इस निष्काम कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और विपरीत फलरूप दोष भी नहीं होता है। इसलिये इस निष्काम कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे उद्धार कर देता है।' अतएव मुक्तिकामियोंको निष्काम कर्मका आचरण करना चाहिये। मुक्तिके लिये आवश्यकता ज्ञानकी है, किसी अन्य बाह्य उपकरणकी नहीं, इसीसे मुक्तिका अधिकार साधनसम्पन्न होनेपर सभीको है। व्यापारी भाइयोंको व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। वे यदि चाहें तो

व्यापारको ही मुक्तिका साधन बना सकते हैं। भगवान्‌ने वर्ण-धर्मका वर्णन करते हुए कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८।४६)

'जिस परमात्मासे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति हुई है, जिससे यह सर्व जगत् (जलसे बर्फकी भाँति) व्याप्त है, उस परमेश्वरको अपने स्वाभाविक कर्मद्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धिको प्राप्त होता है।'

इस मन्त्रके अनुसार वैश्य अपने वर्णोचित कर्म व्यापारके द्वारा ही भगवान्‌को पूजकर परम सिद्धि पा सकते हैं। इस भावनासे व्यापार करनेवाले सरलता और सुगमताके साथ संसारका सब काम सुचारुरूपसे करते हुए भी मनुष्य-जीवनके अन्तिम ध्येयको प्राप्त कर सकते हैं। लोभ या धनकी इच्छासे न कर, कर्तव्यबुद्धिसे व्यापार करना चाहिये। कर्तव्यबुद्धिसे किये हुए कर्ममें पाप नहीं रह सकते। पाप होनेका कारण लोभ और आसक्ति है। कर्तव्यबुद्धिमें उनको

स्थान नहीं है। कर्तव्यबुद्धिसे किये हुए व्यापार द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि और ईश्वरकी प्रसन्नता होती है। शुद्ध अन्तःकरणमें तत्त्वज्ञानकी स्फुरणा होती है और उससे भगवत्कृपा होनेपर परमपदकी सुलभतासे प्राप्ति होती है। परमपद-प्राप्ति करनेकी इच्छा न रखकर केवल भगवत्प्रीत्यर्थ व्यापार करनेवाला और भी उत्तम तथा प्रशंसनीय है।

गीताके उपर्युक्त मन्त्रके अनुसार जब यह विवेक हो जाता है कि सारा संसार ईश्वरसे उत्पन्न है और वह ईश्वर ही समस्त संसारमें स्थित है, तब फिर उसका विस्मरण कभी नहीं हो सकता। परमात्माके इस चेतन और विज्ञानस्वरूपकी नित्य जागृति रहनेके कारण माया या अन्धकारके कार्यरूप काम, क्रोध, लोभ, मोहादि शत्रु कभी उसके समीप ही नहीं आ सकते। प्रकाशमें अन्धकारको स्थान कहाँ है? व्यापारमें असत्य, छल, कपटादि करनेकी प्रवृत्ति काम, लोभादि दोषोंके कारण ही होती है। जब काम-लोभादिका अभाव हो जाता है तब

व्यापार स्वतः ही पवित्र बन जाता है। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि उस व्यापारसे ईश्वर-पूजा कैसे की जाय। पूजाके लिये शुद्ध वस्तु चाहिये। पापरहित व्यापार शुद्ध तो हो गया, पर पूजा कैसे हो? पूजा यही है कि लोभके स्थानमें ईश्वरप्रीतिकी भावना कर ली जाय। पतिव्रता रमणीकी भाँति समस्त कार्य ईश्वर-प्रीत्यर्थ, ईश्वरके आज्ञानुसार हों। ऐसे व्यापार-कार्यमें किसी दोषको स्थान नहीं रह जाता और यदि कहीं भ्रमसे अनजानमें कोई दोष हो भी जाता है तो वह दोष नहीं समझा जाता। कारण, उसमें सकामभाव नहीं है। यदि कोई मनुष्य स्वार्थ, मान-बड़ाईका सर्वथा त्यागकर लोकसेवाके कार्यमें लग जाता है और कभी दैवयोगसे उससे कोई भूल बन जाती है, तब भी उसे कोई दोष नहीं देते और न उसे दोष लगता है। यह स्वार्थत्यागका—निष्कामभावका महत्त्व है। यदि कोई कहे कि स्वार्थ बिना व्यापारमें प्रवृत्ति ही नहीं होगी, जब कोई स्वार्थ ही नहीं तब व्यापार

कोई क्यों करेगा? इसके उत्तरमें यह कहा जाता है कि स्वार्थ देखनेकी इच्छा हो तो इसमें बड़ा भारी स्वार्थ भी समाया हुआ है। अन्तःकरणकी शुद्धि होकर ज्ञान उत्पन्न होना और उससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाना क्या कम स्वार्थ है? यही तो परम स्वार्थ है। पर इस स्वार्थकी बुद्धि भी जितने अंशमें अधिक त्याग की जाय, उतनी ही जल्दी सिद्धि होती है। स्वार्थबुद्धि हुए बिना लोग प्रवृत्त नहीं हो सकते, इसीलिये यहाँपर यह स्वार्थ बतलाया गया है, नहीं तो स्वार्थके लिये किसी कर्ममें प्रवृत्त होना बहुत उत्तम बात नहीं है।

यदि यह शंका हो कि लोभबुद्धि रखे बिना तो व्यापारमें नुकसान ही होगा, कभी लाभ होना सम्भव नहीं। यदि ऐसा है तो फिर यह काम केवल धनीलोग ही कर सकते हैं, सर्वसाधारणके लिये यह उपाय उपयुक्त नहीं है। पर ऐसी बात नहीं है। एक ईमानदार सच्चा गुमाश्ता मालिकके आज्ञानुसार मालिकके लिये बड़ी कुशलतासे आलस्य और

प्रमाद छोड़कर दूकानका काम करता है, मालिकसे अपनी उन्नति चाहनेके सिवा दूकानके किसी काममें उसका अन्य कोई स्वार्थ नहीं है। न उसे अन्य स्वार्थबुद्धि ही है। इस कार्यमें कहीं उन्नतिमें बाधा नहीं आती। इसी प्रकार भक्त अपने भगवान्‌की प्रीतिरूप स्वार्थका आश्रय लेकर सब कुछ भगवान्‌का समझकर उसके आज्ञानुसार सारा कार्य करे तो उसकी उन्नतिमें कोई बाधा नहीं आ सकती। रही धनकी बात, सो धनवान् निःस्वार्थबुद्धिसे कार्य कर सकता है, गरीब नहीं कर सकता, यह मानना भ्रममूलक है। दृष्टान्त तो प्रायः इसके विपरीत मिला करते हैं। धन तो निःस्वार्थभावमें बाधक होता है। जो स्वार्थबुद्धिसे सर्वथा छूटा हुआ हो उसकी बात तो दूसरी है, नहीं तो धनसे अहंकार, ममता, लोभ और प्रमाद उत्पन्न हो ही जाते हैं। न्याययुक्त निःस्वार्थ व्यापारके लिये अधिक पूँजीकी भी आवश्यकता नहीं है। वास्तवमें इसमें थोड़ी या ज्यादा पूँजीका प्रश्न नहीं है, सारी बात निर्भर है

कर्ताकी बुद्धिपर! एक पूँजीपति निःस्वार्थबुद्धि न होनेसे बड़ी पूँजीके व्यापारसे गरीबोंकी सेवा नहीं कर सकता, पर तैल, नमक, भूजा बेचनेवाला एक गरीब दूकानदार निःस्वार्थबुद्धि होनेके कारण संसारकी सेवा करनेमें समर्थ होता है। बड़ा व्यापारी पापबुद्धिसे नरकोंमें जा सकता है, परन्तु पान-सुपारी बेचनेवाला निःस्वार्थी भक्त, गरीब जनतारूप परमात्माकी सेवा कर परमपदको प्राप्त कर सकता है।

दूकानदारको यह बुद्धि रखनी चाहिये कि उसकी दूकानपर जो ग्राहक आता है वह साक्षात् परमात्माका ही स्वरूप है। जैसे लोभी दूकानदार, झूठ, कपट करके दिखौवा आदर-सत्कार या प्रेम करके हर तरहसे ग्राहकको ठगना चाहता है, वैसे ही इस दूकानदारको चाहिये कि वह सच्ची सरल बातोंसे सच्चे प्रेमके साथ ग्राहकको सब बातें यथार्थ समझाकर उसका जिस बातमें हित होता हो वही करे। लोभीकी दूकानपर जैसे ग्राहक बार-बार नहीं आया करते; क्योंकि आये ग्राहकको ठग लेनेमें ही

वह अपना कर्तव्य समझता है और ऐसा ही दूकानदार आजकल चतुर और कमाऊ समझा जाता है। इसी प्रकार यह समझकर कि ग्राहकरूपी परमात्मा बार-बार नहीं आते, इनकी जो कुछ भी सेवा मुझसे हो जाय सो थोड़ी है, उसके साथ पूरी तरहसे उसके हितको देखते हुए पूर्ण सत्यताका व्यवहार करना चाहिये।

संसारका सब धन परमात्माका है, हम सब उसकी प्रजा हैं, परमात्माने योग्यतानुसार सबको खजाना सँभलाकर हमें उसकी रक्षा और यथायोग्य व्यवहारकी आज्ञा दी है।

अतएव कोई भी काम छोटा-बड़ा नहीं है। जिसके पास अधिक रुपये हैं और ज्यादा काम जिम्मे है वह बड़ा है और कमवाला छोटा है सो बात नहीं है। छोटे-बड़े सबको एक दिन सब कुछ दूसरेको सौंपकर मालिकके घर जाना पड़ता है। जो मालिकका काम ईमानदारीसे चलाकर जाता है, वह सुखसे जाता है और तरक्की पाता है, मालिकके मन

चढ़ जानेपर मालिकके बराबरका हिस्सेदार भी बन सकता है और जो बेईमानीसे मालिककी चीजको अपनी समझकर कर्तव्य भूलकर छल-कपट करके जाता है वह दण्डका और अवनतिका पात्र होता है। एक पिताके कई पुत्र हैं, सबका दूकानमें समान हिस्सा है, पर सब अलग-अलग काम देखते हैं। एक सेठाई करता है, एक दूकानदारी करता है, एक रोकड़का काम देखता है, एक घरका काम देखता है, एक रुपये उगाहनेका काम करता है, सभी उस एक ही फर्मकी उन्नतिमें लगे हैं। पिताने काम बाँट दिये हैं, उसी तरह काम कर रहे हैं। इनमें हिस्सेके हिसाबमें कोई छोटा-बड़ा नहीं है, परंतु अलग-अलग अपना काम न कर यदि सभी सेठाई या सभी दूकानदारी करना चाहें तो सारी व्यवस्था बिगड़ जाती है। इसी प्रकार परम पिता परमात्माके सब सन्तान भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं, जो उसका सेवक बनकर निःस्वार्थभावसे उसके आज्ञानुसार कार्य करता है वही उसको अधिक प्यारा है।

नाटकमें नाटकका स्वामी यदि स्वयं एक मामूली चपरासीका पार्ट करता है, तो वह छोटा थोड़े ही बन जाता है। जिसके जिम्मे जो काम हो उसे वही करना चाहिये। जिसका कार्य सुन्दर और स्वार्थरहित होगा उसीपर प्रभु प्रसन्न होंगे।

अतएव प्राणिमात्रको परमात्माका स्वरूप और पूजनीय समझकर झूठ, कपट, छलको त्यागकर स्वार्थ-बुद्धिसे रहित हो अपने-अपने कार्यद्वारा सर्वव्यापी परमात्माकी पूजा करनी चाहिये। मनमें सदा यह भावना रखनी चाहिये कि किस तरह मैं इस रूपमें मेरे सामने प्रत्यक्ष रहनेवाले परमात्माकी सेवा अधिक कर सकूँ। इस भावनासे व्यापार आप ही सुधर सकता है और इससे एक व्यापारी दूकानपर बैठा हुआ कुछ भी व्यापार करता हुआ सरलताके साथ परमात्माकी सेवा कर उन्हें प्रसन्न कर सकता है। व्यापारी, दलाल, वकील, डॉक्टर, जमींदार, किसान सभी कोई अपनी-अपनी आजीविकाके पेशेद्वारा इस बुद्धिसे परमात्माकी सेवा कर सकते हैं।

मनुष्यका प्रधान कर्तव्य है अपने आत्माकी उन्नति करना। भगवान् कहते हैं—'**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।**' मनुष्यको चाहिये कि वह अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपनी आत्माको अधोगतिमें न पहुँचावे। अब यह समझना है कि आत्माकी उन्नति क्या है और उसका अधःपतन किसमें है?

'अपने अन्दर (अध्यात्म) ज्ञान, (परम) सुख, (अखण्ड) शान्ति और न्यायकी वर्तमानमें और परिणाममें उत्तरोत्तर वृद्धि करना आत्माकी उन्नति है, और इसके विपरीत दुःखके हेतु अज्ञान, प्रमाद, अशान्ति और अन्यायकी ओर झुकना तथा उनकी वृद्धिमें हेतु बनना ही आत्माका अधःपतन है।' मनुष्यको निरन्तर आत्म-निरीक्षण करते हुए आत्माकी उन्नतिके प्रयत्नमें लगना और अधःपतनके प्रयत्नसे हटना चाहिये। संसारमें संग ही उन्नति-अवनतिका प्रधान हेतु है, जो पुरुष अपनी उन्नति कर चुके हैं या उन्नतिके मार्गपर स्थित हैं उनका संग आत्माकी उन्नतिमें और जो गिरे हुए हैं या उत्तरोत्तर गिर रहे

हैं उनका संग आत्माकी अवनतिमें सहायक होता है। इसलिये सदा-सर्वदा उत्तम पुरुषोंका संग करना ही उचित है।

उत्तम पुरुष उनको समझना चाहिये जिनमें स्वार्थ, अहंकार, दम्भ और क्रोध नहीं है, जो मान-बड़ाई या पूजा नहीं चाहते, जिनके आचरण परम पवित्र हैं, जिनको देखने और जिनकी वाणी सुननेसे परमात्मामें प्रेम और श्रद्धाकी वृद्धि होती है, हृदयमें शान्तिका प्रादुर्भाव होता है और परमेश्वर, परलोक तथा सत्-शास्त्रोंमें श्रद्धा उत्पन्न होकर कल्याणकी ओर झुकाव होता है। ऐसे परलोकगत और वर्तमान सत्पुरुषोंके उत्तम आचरणोंको आदर्श मानकर उनका अनुकरण करना एवं उनके आज्ञानुसार चलना तथा अपनी बुद्धिमें जो बात कल्याणकारक, शान्तिप्रद और श्रेष्ठ प्रतीत हो उसीको काममें लाना चाहिये। मनु महाराज भी कहते हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

(२।१२)

'वेद, स्मृति, सत्पुरुषोंके आचरण और जिसके आचरणसे अपने हृदयमें भी प्रसन्नता हो, ये चार धर्मके साक्षात् लक्षण कहे गये हैं।'

अब यहाँ एक प्रश्न होता है कि जो लोग हमारी श्रुति-स्मृतियोंको नहीं मानते हैं, क्या उनके लिये कोई उपाय नहीं है? क्या सभीके लिये श्रुति-स्मृतियोंका मानना आवश्यक है? हिन्दूके नातेसे यद्यपि मुझे श्रुति-स्मृति बहुत प्रिय हैं और मैं उनका पक्षपाती हूँ, तथापि मेरा यह कहना कभी युक्तियुक्त नहीं हो सकता कि श्रुति-स्मृतियोंको माननेके सिवा अन्य कोई सदाचरणका उपाय ही नहीं है। निरपेक्षभावसे मनुष्यमात्रके कर्तव्यकी ओर खयाल करके विचार करनेसे यही भाव उत्पन्न होता है कि सारे संसारका स्वामी और नियन्ता एक ही ईश्वर है। संसारके प्रायः सभी सम्प्रदाय और मत-मतान्तर किसी-न-किसी रूपमें उसीको मानते और उसीकी ओर अपने अनुयायीको ले जाना चाहते हैं। अतएव उन सभी सम्प्रदाय और मत-मतान्तरोंके मनुष्य जिन-

जिन ग्रन्थोंको अपना शास्त्र और धर्मग्रन्थ मानते हैं उनके लिये वही शास्त्र और धर्मग्रन्थ हैं। जो व्यक्ति जिस धर्मको मानता है, उसे उसीके धर्मशास्त्रके अनुसार अपने सदाचारी श्रेष्ठ पूर्वजोंद्वारा आचरित और उपदिष्ट उत्तम साधनोंमेंसे जो अपनी बुद्धिमें आत्माका कल्याण करनेवाले प्रिय प्रतीत हों, उनको ग्रहण करना ही उसका शास्त्रानुसार चलना है। शास्त्रोंकी उन्हीं बातोंका अनुकरण करना चाहिये जो विचार करनेपर अपनी बुद्धिमें भी कल्याणकारक प्रतीत हों। जिनको हम उत्तम पुरुष मानते हैं, उनके भी उन्हीं आचरणोंका हमें अनुकरण करना उचित है, जो हमारी बुद्धिसे उत्तम-से-उत्तम प्रतीत हों। उनके जो आचरण हमारी दृष्टिमें अश्रेयस्कर, अनुचित और शंकास्पद प्रतीत हों, उनको ग्रहण नहीं करना चाहिये।

जिनका कल्याण हो चुका है या जो कल्याणके मार्गपर बहुत कुछ अग्रसर हो चुके हैं, ऐसे पुरुषोंका संग न मिलनेपर या किसीमें भी ऐसा होनेका

विश्वास न जमनेपर ऐसे सत्पुरुषकी प्राप्तिके लिये परमेश्वरसे इस भावसे प्रार्थना करनी चाहिये कि 'हे प्रभो! हे परमात्मन्! हे नाथ! आपमें मेरा अनन्य प्रेम हो, इसके लिये आप कृपा करके मुझे उन महापुरुषोंका संग दीजिये, जो सच्चे मनसे और परम श्रद्धासे आपके प्रेममें मत्त रहते हैं।' बार-बार ईश्वरसे विनय करनेपर उसकी कृपासे साधकको उसकी इच्छाके अनुकूल सत्पुरुषकी प्राप्ति अवश्य ही हो जाती है।

यहाँपर एक प्रश्न यह होता है कि जिनका ईश्वरमें विश्वास है, वही तो ईश्वर-प्रार्थना कर सकते हैं। ईश्वरमें विश्वास रखनेवालोंका संतों और शास्त्रोंमें भी विश्वास होना सम्भव है; परंतु जिनका ईश्वर, परलोक, शास्त्र और संतोंमें विश्वास ही नहीं है उनके लिये क्या कर्तव्य है? इसका उत्तर यह है कि यद्यपि ऐसे लोगोंकी स्थिति बहुत ही दयनीय है तथापि वे भी अपनी बुद्धिके अनुसार अपने आत्माकी उन्नतिका उपाय कर सकते हैं। ऐसे लोगोंको चाहिये कि अपनी

बुद्धिमें जो पुरुष अपनेसे श्रेष्ठ प्रतीत हो, उसीका संग करे। संसारमें मूढ़-से-मूढ़ और बुद्धिमान्-से-बुद्धिमान् पुरुष इस बातको तो प्रायः सभी मानते हैं कि जगत्में हमसे अच्छे मनुष्य भी हैं और बुरे भी हैं। अतएव अपनी बुद्धिमें जो अपनेसे उत्तम, उन्नत, विचारशील, साधुहृदय, सदाचारी और विद्वान् प्रतीत हो, उसीको आदर्श समझकर उसके सदाचरणोंका स्वार्थहीन होकर अनुकरण करना चाहिये। यदि मूर्खता, अभिमान या अन्य किसी कारणवश किसीमें भी अपनेसे अच्छे होनेका विश्वास ही न हो तो अपनी बुद्धिमें भलीभाँति सोच-विचारकर लेनेके बाद जो बातें परिणाममें कल्याणकारक, शान्तिप्रद, सुखकर, लोकहितकर, न्याययुक्त और धर्मसंगत जँचें, उन्हीं बातोंको मानना और स्वार्थ छोड़कर उन्हींके अनुसार कर्म करना चाहिये।

सभी मनुष्योंमें प्रधानतः दो तरहकी वृत्तियाँ होती हैं—एक ऊर्ध्वको ले जानेवाली यानी आत्माको उन्नत बनानेवाली और दूसरी अधोगतिको ले जानेवाली यानी आत्माका पतन करनेवाली। इन

दोनोंमें जो विवेक-वृत्ति कल्याणमें सहायक होकर उत्तम आचरणोंमें लगाती है वह ऊपर उठानेवाली है, और जो अविवेक-वृत्ति राग-द्वेषमय अहंकारादिके द्वारा अधम आचरणोंमें प्रवृत्त करती है वह नीचे गिरानेवाली है। मनुष्य विवेक-वृत्तिके द्वारा अपनी उन्नति करना चाहता है परन्तु अविवेक-वृत्ति उसे बलपूर्वक सन्मार्गसे च्युत करके अन्यायपथपर ढकेल देती है। इसीसे अर्जुनने भगवान्‌से पूछा था—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

(गीता ३।३६)

'हे वार्ष्णेय! फिर यह पुरुष बलात् लगाये हुएके सदृश न चाहता हुआ भी किससे प्रेरित होकर पापका आचरण करता है?' भगवान्‌ने जवाबमें कहा—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३।३७)

'रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यही महा-अशन अर्थात् अग्निके सदृश भोगोंसे न तृप्त होनेवाला बड़ा पापी है, इस विषयमें तू इसको ही शत्रु जान!' आगे चलकर भगवान्‌ने बतलाया कि रागरूप आसक्तिसे उत्पन्न होनेवाले इन कामादि शत्रुओंने ही मनुष्यकी इन्द्रियों और उसके मनपर अधिकार जमा रखा है, अतएव पहले इन्द्रियों और मनको अधीनतासे छुड़ाकर इन कामादि बुरी वृत्तियोंका विनाश करना चाहिये। ऐसा करनेमें साधक समर्थ है। इसीसे भगवान्‌ने कहा कि—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

(गीता ३। ४२-४३)

'शरीरसे इन्द्रियोंको श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं, इन्द्रियोंसे परे मन है, मनसे परे बुद्धि है और

जो बुद्धिसे भी अत्यन्त परे है, वह आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिसे परे अर्थात् सूक्ष्म, सब प्रकारसे बलवान् और श्रेष्ठ अपने आत्माको जानकर बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! अपनी शक्तिको समझकर इस दुर्जय कामरूप शत्रुको मार!'

भगवान्‌के इन वचनोंके अनुसार मनुष्यको अपने आत्माके उद्धारके लिये उत्तरोत्तर अधिक उत्साहसे चेष्टा करनी चाहिये। राग-द्वेषमय अहंकारादियुक्त अविवेक-वृत्तिका दमनकर विवेक-वृत्तिको जाग्रत् करनेसे ही सब कुछ ठीक हो सकता है। यही कर्तव्य पालन है।

अब यह बात विचारणीय है कि प्रायः सभी मनुष्य अपनी बुद्धिके अनुसार उन्नतिके लिये चेष्टा तो करते हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। ऐसी कौन-कौन-सी प्रधान बाधाएँ हैं जो मनुष्यको उन्नतिपथमें बढ़नेसे सदा रोके रखती हैं? इसका उत्तर यह है कि हमने कुसंग और असदभ्याससे ऐसी अनेक बाधाएँ खड़ी कर रखी हैं, जिनके

कारण हम यथार्थ उन्नतिके पथपर आरूढ़ नहीं रह सकते। उनमेंसे प्रधान ये हैं—

(१) **आसक्ति**—खाने-पहनने, विलासिता करने, सांसारिक विषयोंका रस-बुद्धिसे उपभोग करनेमें प्रवृत्त करानेवाली वृत्तिका नाम आसक्ति है। मनुष्य विचारसे समझता है कि व्यभिचार करना बहुत बुरा है—पाप है। अमुक वस्तुका खाना शरीर और बुद्धिके लिये हानिकर है। परन्तु विषय-लालसा-रूप कामवृत्ति विवेकको ढककर उसे उन्हीं विषयोंमें ले जाती है। इस आसक्तिके वश होकर ही इन्द्रियाँ बलात् मनको खींचकर विषय-सागरमें डुबो देती हैं (गीता २। ६०)। इस काम-वृत्तिका अवश्य ही नाश करना चाहिये। जिन वस्तुओंकी ओर मन आकर्षित हो, हमें उनके गुण-दोषोंका विचारकर जिसमें दोष और परिणाममें दुःख प्रतीत होता हो, उसका हठ या विवेकसे विरोध या त्याग कर देना चाहिये और जिसमें दोष-दुःख न प्रतीत हो, उसे ग्रहण करना चाहिये।

(२) **द्वेष**—जो क्रोधके रूपमें परिणत होकर न्यायान्यायके विचारको नष्ट कर देता है और चाहे जैसे अन्याय कर्ममें लगा देता है। काम-वृत्ति जाग्रत् होनेपर जैसे मनुष्य चाहे जैसा पाप कर बैठता है, इसी प्रकार क्रोधकी वृत्तिमें भी वह बड़े-से-बड़ा अन्याय करते नहीं हिचकता। अतएव द्वेषको कभी हृदयमें नहीं टिकने देना चाहिये। जब किसीपर क्रोध आवे तब उसी समय सावधान होकर विवेक-बुद्धिसे काम लेना चाहिये। क्रोधके वशमें होकर कुछ कर बैठना भविष्यमें अत्यन्त दुःखदायी हुआ करता है।

(३) **लोभ**—विचारवान् पुरुषोंने लोभको पापका जन्मदाता बतलाया है। लोभवृत्ति जागनेपर न्यायान्याय और सत्यासत्यका विचार नहीं ठहर सकता। दूसरोंको धोखा देना, ठगना, धनके लिये नीच-से-नीच कर्म कर बैठना लोभी मनुष्यका स्वभाव-सा बन जाता है। धन-संग्रहको ही जीवनका ध्येय समझनेवाले लोभीसे धर्मका संग्रह होना

अत्यन्त कठिन है। अतएव ईश्वर और प्रारब्धपर भरोसा करके लोभका त्याग करना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीतामें काम, क्रोध और लोभ—इन तीनोंको आत्मनाशक नरकका द्वार बतलाया है। (१६। २१)

(४) **भय**—इसके उत्पन्न होनेपर मनुष्य धैर्यको त्यागकर तुरन्त पापमें प्रवृत्त हो जाता है। जो मनुष्य निर्भय होकर न्यायपथपर चलता है, महान्-से-महान् संकटमें भी धैर्य नहीं छोड़ता, उसका यहाँ-वहाँ कहीं भी कभी पतन नहीं होता। परमात्माको हर जगह देखनेपर तो भय कहीं रहता ही नहीं, परन्तु हृदयमें धैर्य धारण करके विचार करने तथा शूर-वीरताका अवलम्बन करनेसे भी मनुष्य निर्भय हो सकता है। इस बातको समझकर सदा निर्भय रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भयमें पड़कर अधीरतासे अन्यायको कभी स्वीकार नहीं करना चाहिये।

(५) **दम्भ**—अपने बुरे भावोंको छिपाकर

लोभ, भय या अज्ञानसे धन, मान, बड़ाई आदिके लिये बिना हुए ही अच्छे भाव दिखलाना या अपने थोड़े अच्छे भावोंको विशेष रूपसे दिखाना दम्भ कहलाता है। यह दोष कल्याण-मार्गमें बहुत बड़ा बाधक है, साधकके अधःपतनके प्रधान हेतुओंमेंसे यह विशेष प्रधान है। असत्य, छल, अन्याय आदि दोष दम्भके गर्भमें स्वाभाविक ही छिपे रहते हैं। दम्भी मनुष्य समझता है कि मैं दूसरोंको ठगता हूँ परन्तु वास्तवमें वह स्वयं ही ठगा जाता है। दम्भसे किये हुए यज्ञ-दानादि सत्कर्म भी क्षय हो जाते हैं, बल्कि कहीं-कहीं तो कर्ताको पुण्यके बदले पापका भागी बनना पड़ता है। अतएव विचारवान् पुरुषको इस दोषसे खूब बचना चाहिये। आजकलकी दुनियामें इस दोषका बहुत विस्तार हो गया है। हजारोंमें भी एक मनुष्य ऐसा मिलना कठिन है, जिसमें दम्भका लेश भी न हो।

उपर्युक्त पाँच तो प्रधान दोष हैं। इनके सिवा हमने बहुत-सी ऐसी आदतें डाल ली हैं, जिनसे

विवश होकर हमें कल्याणपथसे गिरना पड़ता है। विचार-दृष्टिसे प्रत्यक्ष अधःपतन करनेवाली दीखनेपर भी प्रारम्भमें मोहसे कुछ सुखप्रद प्रतीत होनेके कारण हम उन्हें छोड़ना नहीं चाहते। जैसे—

(क) **दूसरेके आश्रयपर निर्भरकर पराधीनतामें जीवन बिताना**—जो स्वावलम्बी नहीं होते, जिनका जीवन-निर्वाह दूसरोंकी कमाईसे होता है, जो दूसरोंके द्वारा रक्षित होकर जीवन धारण करते हैं, वे अपने विचारोंकी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें अपने आश्रयदाताके विचारोंके आगे दबना पड़ता है। कभी-कभी तो अपने सद्विचारोंकी हत्यातक करनी पड़ती है। विचारोंके दबते-दबते नवीन सद्विचारोंकी सृष्टि होनी रुक जाती है, शरीरकी भाँति उनकी बुद्धि और विवेक भी परमुखापेक्षी बन जाते हैं। अतएव यथासम्भव स्वावलम्बी बननेकी चेष्टा करनी चाहिये।

करनेमें दिलको लगाना ही नहीं। यह बहुत ही बुरी आदत है। इस आदतके वशमें रहनेवाले मनुष्यका इस लोक या परलोकमें उन्नत होना अत्यन्त ही कठिन है। समय बहुत थोड़ा है, मार्ग दूर है। मृत्यु प्राप्त होने और शरीरपर रोगोंका आक्रमण होनेसे पहले ही तत्पर होकर कर्तव्य-पालनमें लग जाना चाहिये। प्रत्येक सत्कार्यकी प्राप्ति होते ही उत्साहके साथ उसी समय उसे सम्पन्न करनेके लिये प्रस्तुत हो जाना चाहिये।

(ङ) **माता, पिता आदि गुरुजनोंकी आज्ञाकी अवहेलना**—यह आदत आजकल बहुत बढ़ रही है, खासकर पढ़े-लिखे लोगोंमें। बड़े-बूढ़े अनुभवी गुरुजनोंकी स्नेहभरी आज्ञाकी अवहेलना करते रहनेसे सन्मार्गपर प्रवृत्त होनेमें बड़ी बाधा होती है। गुरुजनोंके आशीर्वादसे आयु, विद्या, यश और बलकी

वृद्धि होती है। उनके अनुभवपूर्ण वाक्योंसे हमें जीवन-निर्वाहका मार्ग सूझता है। अतएव यथासाध्य गुरुजनोंकी आज्ञापालन करनेमें तत्पर होना चाहिये।

(च) **दूसरोंकी निन्दा-स्तुति करना या व्यर्थ पर-चर्चा करना**—पराई-निन्दा-स्तुति या व्यर्थ चर्चा मनुष्यको बहुत ही मीठी लगती है, जिसमें पर-निन्दा और पर-चर्चा तो सबसे बढ़कर प्यारी है। निन्दा-स्तुति और पर-चर्चामें असत्य, द्वेष और दम्भकी बहुत गुंजाइश मिल जाती है। अतएव निन्दा या व्यर्थ चर्चा तो कभी नहीं करनी चाहिये। स्वार्थ-सिद्धिके लिये स्तुति करना भी बहुत बुरा है। बिना हुए ही स्वार्थवश किसीके अधिक गुणोंका बखान करना उसको ठगना है। योग्यता प्राप्त होनेपर यथार्थ शब्दोंमें स्तुति करनेपर कर्ताके लिये कोई हानि नहीं है।

(छ) **मान-बड़ाई या प्रतिष्ठाका चाहना और उनके प्राप्त होनेपर स्वीकार करते रहना**—यह दादके खाजकी तरह बड़ा ही सुहावना रोग है, जो आरम्भमें सुखकर प्रतीत होनेपर भी अन्तमें बड़ा दुःखदायी होता है। आजकल तो मानो मान-बड़ाईके क्षुद्र मूल्यपर हमारा महान् धर्म-कर्म सब कुछ बिक गया है। मनुष्य जो कुछ अच्छा कर्म करता है, वह सब मान-बड़ाईके प्रवाहमें बहा देता है। यद्यपि प्रमादी और विषयासक्त पुरुषोंकी अपेक्षा मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये भी अच्छे कर्म करनेवाले उत्तम हैं, तथापि आत्माके कल्याण चाहनेवालोंकी तो मान-बड़ाईसे बड़ी हानि होती है। जिस साधनसे अमूल्य-निधि परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, उनका वह सब साधन मान-बड़ाईमें चला जाता है। यह बड़ी भयानक, गम्भीर और

संक्रामक व्याधि है, हृदयके अन्तस्तलमें छिपी रहती है। स्त्री-पुत्र और धन-ऐश्वर्यके त्यागियोंमें भी प्रायः मान-बड़ाईका रोग देखा जाता है। विचारबुद्धिसे बुरा समझनेपर भी मनुष्य सहजमें इससे सर्वथा नहीं छूट सकता। इसके परमाणु जगत्‌भरमें फैले हुए हैं। करोड़ोंमें कोई एक ही शायद इस छूतकी बीमारीसे बचा होगा। इसका सम्पूर्ण नाश तो परमात्माका तत्त्व जाननेपर ही होता है, परन्तु चेष्टा करनेसे पहले भी बहुत कुछ दमन हो जाता है। अतएव इसके नाशके लिये हर समय प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस प्रयत्नमें भी यह सावधानी अवश्य रखनी चाहिये कि कहीं बदलेमें अनुचित हठ या दम्भ न उत्पन्न हो जाय।

उपर्युक्त प्रधान बाधाओंसे बचकर आत्मोन्नतिकी चेष्टा करनेवाला मनुष्य अन्तमें सफल हो सकता है।

अब संक्षेपमें उन मुख्य-मुख्य साधनोंको भी जान लेना चाहिये, जिनसे आत्मोन्नतिमें बड़ी सहायता मिलती है और जो कर्तव्यके प्रधान अंग हैं।

(१) सत्पुरुषोंका संग और सत्-शास्त्रोंका अध्ययन करके उनके उत्तम सत्-आचरणों और उपदेशोंका अनुकरण और ग्रहण करना।

(२) ईश्वरकी सत्तापर विश्वास करना। परमात्माका विश्वास ज्यों-ज्यों बढ़ता जायगा त्यों-ही-त्यों सारे दोष स्वयमेव नष्ट होते चले जायँगे। सर्वव्यापी परमेश्वरमें जितना अधिक विश्वास होगा, उतना ही आत्मा अधिक उन्नत होगा। जैसे सूर्यके उदय होनेके पूर्व उसके आभाससे ही अन्धकार मिट जाता है वैसे ही परमात्माकी शरण ग्रहण करनेसे पहले ही उसपर विश्वास होते ही पाप नष्ट हो जाते हैं। सब समय सब जगह परमात्माके स्थित होनेका

विश्वास हो जानेपर मनुष्यसे कभी कहीं भी पाप नहीं हो सकते।

(३) ईश्वरके शरणागत होकर निष्काम और प्रेमभावसे उसके नामके जपका निरन्तर अभ्यास करना। जिसका जिस नामसे प्रेम हो, उसके लिये वही नाम विशेष लाभप्रद है। जिस पुरुषको जिस नामसे लाभ पहुँचा, उसने उसी नामकी विशेष महिमा गायी है। इससे इस भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये कि अमुक नाम बड़ा है और अमुक छोटा है। न्यायदृष्टिसे देखनेपर परमात्माके सभी नाम समान प्रभावशाली प्रतीत होते हैं। जिसका जो इष्ट हो, जो प्रिय हो, उसके लिये वही श्रेष्ठ है। अपनी-अपनी कल्पनासे सम्प्रदायानुसार तारतम्यता है, वास्तवमें नहीं। अतएव जो नाम-जप नहीं करते हैं, उन्हें जो अच्छा लगे उसी नामका जप करना चाहिये और

जो जिस नामका जप करते हैं उन्हें उसका परिवर्तन न कर उसीको आदर और प्रेमसहित बढ़ाना चाहिये।

(४) परमेश्वरके स्वरूपका मनन करना। जिसको जो इष्ट हो, अपनी कल्पनामें ईश्वरको जो जैसा समझता हो, उसे वैसे ही स्वरूप या भावका निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। ईश्वरके सम्बन्धमें इतनी बातें अवश्य ही दृढ़तापूर्वक हृदयमें धारण कर लेनी चाहिये कि ईश्वर है, सर्वत्र है, सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान् है, सर्वव्यापी है, सर्व-दिव्य-गुणसम्पन्न है, सर्वज्ञ है, सनातन है, नित्य है, परम प्रेमी है, परम सुहृद् है, परम आत्मीय है और परम गुरु है। इन गुणोंमें उससे बढ़कर या उसकी जोड़ीका दूसरा जगत्में न कोई हुआ, न है और न हो सकता है।

(५) मन, वाणी, शरीरके द्वारा स्वार्थरहित होकर

वैसी चेष्टा सदैव करते रहना चाहिये जो अपनी बुद्धिमें कल्याणके लिये अत्यन्त श्रेयस्कर प्रतीत हो।

(६) जिसको अपना कर्तव्य समझ लिया उसके पालन करनेमें दृढ़ रहना चाहिये। लोभ, भय, स्वार्थ या अज्ञान किसी भी कारणसे कर्तव्यच्युत नहीं होना चाहिये।

यही छः बातें विशेषरूपसे कर्तव्य समझने-योग्य हैं। यह सब मैंने संक्षेपमें अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार लिखा है, हो सकता है यह ठीक न जँचे या इससे उत्तम और कोई बातें हों। सबको अपनी बुद्धिके अनुसार अपने-अपने लाभकी बातें सोचकर उनके अनुकूल चलना चाहिये। अपनी बुद्धिमें जो बात निर्विवादरूपसे अच्छी प्रतीत हो, आसक्तिके वश होकर उसे कभी नहीं छोड़ना चाहिये। इसके अतिरिक्त मनुष्य और कर ही क्या सकता है? अपनी विवेकबुद्धिके सहारे जो आत्मोन्नतिकी चेष्टा करता है वह प्रायः सफल ही

होता है। और जो परमात्माका आश्रय लेकर परमात्माकी खोजके लिये अपनी बुद्धिके अनुसार परमात्माकी प्रेरणा समझकर साधन करता है, उसकी सफलतामें तो कोई सन्देह ही नहीं करना चाहिये। साधारणतः प्रत्येक मनुष्यको दिनके चौबीस घण्टेमेंसे छः घण्टे कर्तव्यकर्मके पालनरूप योग-साधनमें, छः घण्टे न्याययुक्त धर्मसंगत आजीविकाके लिये कर्म करनेमें, छः घण्टे शौच, स्नान, आहारादि शारीरिक कर्ममें और छः घण्टे सोनेमें खर्च करने चाहिये।

॥ श्रीहरि: ॥

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
683	तत्त्वचिन्तामणि	248	कल्याणप्राप्तिके उपाय
814	साधन-कल्पतरु (तेरह महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	249	शीघ्र कल्याणके सोपान
1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?	250	ईश्वर और संसार
1631	भगवान् कैसे मिलें ?	519	अमूल्य शिक्षा
1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि
1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि
1666	कल्याण कैसे हो ?	252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा
527	प्रेमयोगका तत्त्व	254	व्यवहारमें परमार्थकी कला
242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम
528	ज्ञानयोगका तत्त्व	258	तत्त्वचिन्तामणि
266	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-१)	257	परमानन्दकी खेती
267	कर्मयोगका तत्त्व (भाग-२)	260	समता अमृत और विषमता विष
303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	259	भक्ति-भक्त-भगवान्
298	भगवान्के स्वभावका रहस्य	256	आत्मोद्धारके सरल उपाय
243	परम साधन—भाग-१	261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान
244	,, ,, भाग-२	262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र
245	आत्मोद्धारके साधन-भाग-१	263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र
335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति	264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१
579	अमूल्य समयका सदुपयोग	265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-२
246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१
247	,, ,, (भाग-२)	269	परमशान्तिका मार्ग—भाग-२
611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति	543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह
588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	1530	आनन्द कैसे मिले ?
1296	कर्णवासका सत्संग	769	साधन नवनीत
1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता		

कोड	पुस्तक
599	हमारा आश्चर्य
681	रहस्यमय प्रवचन
1021	आध्यात्मिक प्रवचन
1324	अमृत वचन
1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय
1433	साधना पथ
1483	भगवत्पथ-दर्शन
1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें
1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय
1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?
1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?
1587	जीवन-सुधारकी बातें
1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम
292	नवधा भक्ति
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी
273	नल-दमयन्ती
277	उद्धार कैसे हो ?— ५१ पत्रोंका संग्रह
278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह
280	साधनोपयोगी पत्र
281	शिक्षाप्रद पत्र
282	पारमार्थिक पत्र
284	अध्यात्मविषयक पत्र
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ
1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें
680	उपदेशप्रद कहानियाँ
891	प्रेममें विलक्षण एकता
958	मेरा अनुभव
1283	सत्संगकी मार्मिक बातें
1150	साधनकी आवश्यकता
320	वास्तविक त्याग
285	आदर्श भ्रातृप्रेम
286	बालशिक्षा
287	बालकोंके कर्तव्य
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा
290	आदर्श नारी सुशीला
291	आदर्श देवियाँ
300	नारीधर्म
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?
293	सच्चा सुख और.......
294	संत-महिमा
295	सत्संगकी कुछ सार बातें
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म
310	सावित्री और सत्यवान्
299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप
304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित
623	धर्मके नामपर पाप
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याणप्राप्तिकी कई युक्तियाँ)
311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य
306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?
307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण)
316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये नाम-जप सर्वोपरि साधन है और सत्यकी शरणसे मुक्ति
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य